International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 6; November 2018; Page No. 41-43

मध्य कालीन उत्तर भारत में व्यापार एवं व्यापारिक मार्गों का तथ्यात्मक अध्ययन

डॉ0 दुर्गेश कुमार सिंह
प्राचार्य, स्वतंत्र गर्ल्स डिग्री कालेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
पूर्व मध्य काल में मध्य भारत, उत्तर भारत, राजस्थान, मालवा और गुजरात में जो हम सिक्के का चलन फिर से आरम्भ होते देखते है, उसका सम्बन्ध विशेषकर पश्चिमी भारत में वाणिज्य व्यापार की प्रगति से जोड़ा जा सकता है। इस काल में मुद्रा की स्थिति पर विचार करने पर हम आन्तरिक और विदेशी दोनों तरह की व्यापारिक प्रगति को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते है। नये–नये साधनों के प्रयोग से यातायात की सुविधा बढ़ी होगी। जिससे व्यापार को सहायता मिलती होगी।

शब्द मूल : आन्तरिक व्यापार, विदेशी व्यापार, व्यापारिक मार्ग, मुद्रा का चलन, व्यापारिक वर्ग, श्रेणियाँ, वस्तु विनिमय।

प्रस्तावना
पूर्व मध्ययुग में व्यापार का विस्तार पूर्ववत् था। व्यक्ति की आवश्यकताओं की विभिन्न वस्तुएं उत्पादित की जाती थी, जिन्हें बाजारों और हाटों में लाकर बेचा जाता था। श्वानचांग ने समकालिक भारतीय व्यापार और वाणिज्य का वर्णन करते हुए लिखते है कि उस समय भारतीय व्यापार अत्यंत विकसित था। दूर–दूर के व्यापारी आकर नगरों में क्रय–विक्रय करते थे, उस समय भिन्न–भिन्न व्यापारी संगठन थे जो व्यापारियों के हित का कार्य किया करते थे। बाजारों में विभिन्न वस्तुएं सजाकर रखी रहती थी और वहाँ क्रय–विक्रय का सिलसिला बना रहता था। कश्मीर के लोग घोड़े एवं गायों का व्यापार करते थे। कामरूप और कलिंग के जंगलों से हाथी पकड़कर लाये जाते थे। प्रायः वैश्य वर्ण के लोग ही विभिन्न वस्तुएं के व्यापार के लिए नगरों आदि के बाजार में सम्मिलित होते थे। श्वानचांग के अनुसार नगरों की सड़कों के दोनों ओर दुकानें रहती थी, जहाँ लोग अपनी आवश्यकतानुसार खरीद एवं बिक्री करते थे। थानेश्वर आदि विभिन्न नगरों के व्यापारी दूसरे देशों का सामान एकत्र कर बाजारों में बेचा करते थे। बाण ने भी थानेश्वर के विषय में लिखा है कि यह नगरी अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध थी। थानेश्वर आश्रितों के लिए चिन्तामणि भूमि और व्यापारियों के लिए लालभूमि थी। यह एक व्यापारिक केन्द्र के नाते प्रसिद्ध था। मथुरा, वाराणसी, कान्यकुब्ज, अयोध्या भी व्यापार के केन्द्र थे।

शोध का उद्देश्य
पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत में किस तरह के व्यापार का चलन था और किन व्यापारिक मार्गों से आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार संचालित होता था।

शोध का महत्व
शोध का महत्व यह है कि आज हम सभी यह जान सकें कि उस समय किन वस्तुओं का उत्पादन, वितरण और व्यापार पूर्व मध्य काल में होता था और तत्कालीन समय में भारत का किन देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था तथा सामन्तवादी व्यवस्था के फलस्वरूप आन्तरिक व्यापार कैसा था?

शोध प्रविधि
इसमें प्राथमिक आंकड़ों को स्वयं शोधकर्त्ता द्वारा एक विशेष उद्देश्य के लिए संकलित कर उनका प्रयोग शोध हेतु किया जाता है। इसमें गणनात्मक एवं गुणात्मक शोध पद्धतियों द्वारा प्रमुख ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण कर वर्णनात्मक पद्धति से शोध कार्य को पूरा किया गया है।

विवेचना
व्यापार की स्थिति : मेघातिथि ने मनु पर भाष्य करते हुए लिखा है कि वैश्य लोग अन्तर प्रादेशिक व्यापार में संलग्न रहते थे जो दूसरे प्रदेश की निर्मित वस्तुएं राज्य में आयात करते थे। उनके अनुसार वैश्य या व्यापारियों के लिए विभिन्न पदार्थ उत्पादित करने वाले प्रदेशों उनके आचार–विचारों एवं भाषाओं का ज्ञान अपेक्षित था। मालव, मगध, द्रविड़ आदि प्रदेशों की भाषाओं का ज्ञान रखना उनके लिए श्रेष्यकर होता था।

हेमचन्द्र ने क्रय–विक्रय के लिए व्यवहार शब्द का प्रयोग किया जो व्यापार के अर्थ को व्यक्त करता है। क्रय–विक्रय से जीवन–यापन करने वाले व्यापारियों को 'वणिक' कहा जाता था। जिस स्थानीय बाजार में केसर, कस्तूरी जैसी सुगंधित वस्तुएं बेची जाती थी, उसे सुगंधियों का बाजार कहा जाता था। उस समय बड़ी–बड़ी मण्डियाँ होती थी जिन्हें पेष्ठा स्थान कहा जाता था। उशीर, हरिन्द्रा, हरिन्द्रपर्नी, किशर, गुग्गुल, नलद, गलालु आदि वस्तुएं फुटकर रूप में छोटे व्यापारियों द्वारा बाजार में बेची जाती थी। उस समय तीन प्रकार के व्यापारी होते थे। एक प्रास्तारिक जो सोना, चांदी, लोहा, तांबा आदि दूसरे संस्थानिक जो गाय, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि और तीसरे कठिनान्तिक जो बांस, चमड़ा, लाख आदि का विक्रय करते थे।

पूर्व मध्ययुग में अनेक अभिलेखों में व्यापारियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने–जाने का उल्लेख है। 953ई0 के अहर (उदयपुर) अभिलेखों में वर्णन है कि कर्णाट, मध्यप्रदेश, लाट और टक (चिनाब और रावी नदी के बीच का प्रदेश) के वणिक अपने पदार्थों पर लगे कर के बावजूद यहाँ आया करते थे। पेहोवा (करनाल) अभिलेख के अनुसार देश के विभिन्न स्थानों के अश्वों के व्यापारी यहाँ इकट्ठा होते थे और अश्व का क्रय–विक्रय करते

थे। भारतवर्ष से विभिन्न वस्तुओं का आयात और निर्यात होता था। पूर्वी देशों में ब्रह्मा, चीन और सुवर्णभूमि प्रमुख थे, जिनके साथ व्यापार होता था। कम्बोज, पारसीक, यमन, अरब आदि देशों के घोड़े विक्रय के लिए भारत लाये जाते थे।

इलायची, मिर्च, मसालें आदि पूर्वी द्वीपों से भारत आते थे। भृगुकच्छ (भड़ौच) कल्याण, ताम्रलिपि आदि बंदरगाहों से वस्तुओं का आयात एवं निर्यात किया जाता था। उस युग में भारत से भी अनेकानेक वस्तुएं निर्यात की जाती थी। गजदन्त, गोमेद, लाल मलमल, मोटा वस्त्र, रेशम, सूत, लम्बी पिपला आदि वस्तुएं भारत के पश्चिमी बंदरगाहों से विदेश भेजी जाती थी। कस्तूरी (मुश्क) शैलेय, कालीमिर्च, तेजपात, पिपल, काली और सफेद मिर्च, इलायची, चंदन, केसर आदि वस्तुएं भी विदेशी को निर्यात की जाती थी।

नवीं सदी के एक अरब यात्री लिखा है कि सैराफ के जहाज लाल सागर होकर मिस्र नहीं जाते थे बल्कि जद्दा से लौटकर भारत चले जाते है क्योंकि भारत और चीन के समुद्र में मोती और अम्बर होते है। पहाड़ों में रत्नों और सोने की खानें है वहाँ हाथी दांत हैं। पैदावार में आबनूस, बेंत, जूट, कपूर, लौंग, जायफल, बक्कम, चंदन और अनेकानेक सुगंधित द्रव्य होते हैं। तोते और मोर जैसे पक्षी है वहाँ की जमीन से मुश्क या कस्तुरी मिलती है। इस्न खुदब्जि के अनुसार चंदन, कपूर, लौंग, जायफल, कवाबचीनी, नारियल, सन के कपड़े, रूई के मखमली कपड़े, हाथी दांत, लाल मोती, बिल्लौर, भालावार से काली मिर्च, गुजरात से सीसा, दक्षिण से बकाम और सिन्धु से कुट, बांस और बेत ईराक और अरब जैसे देशों में भेजे जाते थे।

गांव के मार्ग भी नगरों से सम्बद्ध होते थे। जहाँ नगर के माध्यम से अनेकानेक आपेक्षित वस्तुएं प्राप्त कर ली जाती थी। देश के प्रत्येक नगर विभिन्न मार्गों द्वारा एक–दूसरे से जुड़े हुए थे। व्यापारी समूह में यात्रा करते थे तथा अभिष्ठ स्थान तक पहुँचने में महीने लग जाते थे। वे अपने सामान प्रायः घोड़ों, गधों, और बैल–गाड़ियों पर लाद कर चलते थे। सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही बणिक बड़े–बड़े समूहों में चलते थे और एकजुट होकर कठिनाईयों का सामना करते थे। पूर्व मध्यकाल में ऐसे व्यापारी (सार्थवाह) लम्बी–लम्बी यात्राएं करते तथा विपुल धन अर्जित करते थे। वे अपने साथ भोजन, पानी और सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करके चलते थे।

प्रमुख व्यापारिक मार्ग

अलबरूनी ने ग्यारहवीं सदी के भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों के जोड़ने वाले मार्गों की विस्तार से चर्चा की है। उसके अनुसार एक मार्ग से कन्नौज से प्रयाग और तत्पश्चात् पूर्वी तट तक जाकर दक्षिण में कांजीवरम् तक जाता था। दूसरा मार्ग कन्नौज या अम्बरी से वाराणसी और तत्पश्चात् गंगा के मुहाने तक जाता था। तीसरा मार्ग कन्नौज से लेकर पूर्व में कामरूप और उत्तर के सीमावर्ती देश नेपाल और तिब्बत तक पहुँचता था। चौथा मार्ग कन्नौज के दक्षिण से होकर दक्षिण तट पर स्थित वनवासी को जोड़ता था। पांचवा मार्ग कन्नौज से बजान या नारायण तक और फिर गुजरात की राजधानी तक जाता था। छठवाँ मार्ग कन्नौज मथुरा से धार तक पहुँचता था। सातवाँ मार्ग धार से उज्जैन को संयुक्त करता था। आठवाँ मार्ग धार से होकर मंदगिरी, गोदावरी तक जाता था। नवाँ मार्ग धार से पश्चिम की ओर सागर तटीय थान को जोड़ता था। दसवाँ मार्ग बजान से कठियावाड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ तक फैला हुआ था। ग्यारहवाँ मार्ग अनहिलवाड़ से मुम्बई के दक्षिणी तट तान तक जाता था। बारहवाँ मार्ग बजान से भाटी (भटिंडा) होते हुए सिंधु नदी के मुहाने तक स्थित कोहरानी (करांची) तक पहुँचता था। अतः इस वर्णन से विभिन्न मार्ग थे। इन मार्गों से विभिन्न प्रकार की सामग्रियों सुदूरवर्ती नगरों और प्रदेशों तक पहुँचायी जाती थी। उत्तर भारत में सर्वाधिक प्रमुख नगर कन्नौज था जो विभिन्न स्थानों व नगरों को जोड़ने वाले मार्ग का केन्द्र स्थल था।

राजपूत काल में जलमार्ग का तद्भव महत्व बना रहा। आन्तरिक व्यापार नदियों से होता था तथा माल भरी बड़ी–बड़ी नावें उनमें चलती थी। बड़े–बड़े नगर नदियों से जुड़े थे जहाँ क्रय–विक्रय तथा वस्तुओं का आदान–प्रदान होता था, सामुदायिक व्यापार भी उस युग में अपने उत्कर्ष पर था। हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर में अनेक व्यापारिक पोत चलाये जाते थे। मिश्र और अरब से होकर जलपोत भारत आते तथा भारत से चीन और पूर्वी द्वीप समूह तक जाया करते थे। फारस की खाड़ी और लाल सागर व्यापारी मार्ग एक–दूसरे से जुड़ चुके थे। जिसका श्रेय अरब व्यापारियों को था। यह अरब बणिक अपने मालों को लेकर कभी स्थल मार्ग से तो कभी समुद्री मार्ग से होकर दूसरे देशों में आते थे। अलबसूदी ने लिखा है कि भारत के पोत बसरा, सिरफ, ओमन, जावा और चम्पा से होकर खनखु (कैन्टन) तक जाते थे। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों और द्वीपों से अनेक प्रकार की वस्तुएं भारत आती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन युग में भारत का सम्बन्ध में पश्चिम और पूरब दोनों ओर के देशों से अत्यंत सुःखद था तथा सुविधानुसार पारस्परिक आदान–प्रदान हुआ करता था।

भारत के पूर्वी तथा दक्षिण मालाबार और कोरोमण्डल तट पर स्थित बन्दरगाहों से चीन, दक्षिण पूर्व एशिया आदि से व्यापार होता था। बंगाल में ताम्रलिप्ति सबसे बड़ा बन्दरगाह था। बाद में ताम्रलिप्ति का नाम सप्तग्राम ने ले लिया था। गुजरात के बन्दरगाह से मलय, एशिया और पूर्वी बन्दरगाह के साथ व्यापार होता था। चीन के साथ भारत का व्यापार अरबों और हिन्द एशिया के प्रतिद्वन्दिता के कारण कम हो रहा था। 10वीं शताब्दी में शुंग कालीन ऐतिहासिक लेख तथा लियांग शू से ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत, चीन के साथ व्यापार करने वाले देशों में सम्मिलित नहीं था किन्तु चोल सम्राट राजेन्द्र चोल की दक्षिण पूर्व एशिया की विजय के फलस्वरूप चीन के साथ व्यापार मार्ग खुल गया। चीन से बढ़ती हुई मात्रा में सोने और चाँदी के व्यापार को रोकने के लिये 1296ई0 में चीन राज्य को नियम बनाने पड़े। चीन से आयतित वस्तुओं में गैंडे की सींग, हाथी, चीते की खाल, मलमल, सन तथा चामर प्रमुख थे। बदले में रेशमी वस्त्र (चीनांशुक) तथा प्रचुर मात्रा में सोना तथा चाँदी भारत आता था।

8वीं शताब्दी में भारत का व्यापार उत्तर पश्चिम दर्रों से होकर मध्य एशिया तथा चीन के साथ क्रमशः कम हो रहा था। मध्यएशिया के राज्यों पर चीन के नियन्त्रण के आभाव में व्यापारियों ने अन्य मार्गों को अपनाया। आसाम, बर्मा, सिक्किम और चुंबी घाटी से होकर दक्षिणी चीन तक अनेक मार्ग थे। एक मार्ग पुण्ड्रवर्धन से कामरूप और दक्षिणी चीन जाता था। कामरूप और तिब्बत के बीच 35 घाटियों से होकर व्यापार होता था। भारत, तिब्बत, आसाम और चीन के बीच स्थल मार्ग से व्यापार होता था।

वस्तु विनिमय

स्मृतियों में अनेक प्रकार की मापों का उल्लेख हुआ था। जिसमें सर्वथा, मध्ययव, कृष्णल, मास, सुवर्ण आदि प्रमुख हैं। फाइयेन के अनुसार इस युग में साधारण वस्तुएं कौड़ियों के माध्यम से खरीदी जा सकती थी। वस्तुओं का उचित मूल्य लेना श्रेयकर माना जाता था।

श्वानचांग ने हर्ष के समय से विनिमय के साधनों का उल्लेख किया है। उसके अनुसार सोने व चांदी के सिक्कें, कौड़िया आदि विनिमय के साधन थे। पूर्व मध्ययुग में सिक्कों के लिए 'ट्रम्स' शब्द का

प्रयोग किया जाता था। हेमचंद के अनुसार वजन और संख्या को निश्चित करने का नाम मान था। जो दो प्रकार का होता था। संख्या और परिमाण के अनुसार कभी–कभी वस्तुओं की अदला–बदली करके भी दूसरी वस्तुएं खरीदी या प्राप्त की जा सकती थी।

इस प्रकार समाज में धीरे–धीरे विभिन्न व्यवसायों और शिल्पीग्राम से नगर की ओर आयें और अपनी सुविधानुसार उन्होंने अपने–अपने व्यवसायों का गठन किया। इस प्रकार समाज में विभिन्न व्यवसाय और शिल्प से सम्बन्धित विभिन्न संगठित समूह बन गये जिनका सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन से निर्माण में अभूतपूर्व योगदान था। बौद्ध साहित्य अनेक व्यवसायों और शिल्पों से सम्बन्धित अनेक विषयों का उल्लेख हुआ है ऐसे व्यवसायिक संगठनों को निगम, संघ, पूग, सेनी (श्रेणी) और गण कहा जाता था। प्रारम्भ जब व्यवसाय प्रारम्भ हुआ तब उसका कोई संगठन स्वरूप नहीं था किन्तु सुविधाओं को ध्यान में रखकर स्वतंत्र संगठनों का प्रभाव बढ़ने लगा तथा सदस्यों के पारस्परिक वाद–विवाद भी आपस में सुलझने लगे। इस प्रकार की संगठनात्मक संस्थायें पूर्ण रूपेण अधिकार सम्पन्न होने लगी। जातकों और अन्य साक्षों में अनेकानेक वृत्तियाँ अपनाने वाली विभिन्न श्रेणियों का वर्णन है। जिनकी संख्या अधिक हैं जो निम्नवत् हैं

1. बढ़ई (लकड़ी का काम करने वाला)
2. स्वर्णकार (सोना–चांदी आदि धातुओं का काम करने वाले)
3. पत्थर का काम करने वाले।
4. चर्मकार (चमड़े का काम करने वाले)
5. दन्तकार
6. ओदयान्त्रिक (पनचक्की चलाने वाले)
7. बंसकार (बांस का काम करने वाले)
8. कसकर (ठठेर)
9. रत्नकार (जौहरी)
10. बुनकर (कपड़ा बुनने वाले)
11. कुम्हार
12. तिलविषक (तेली)
13. डलिया बनाने वाले
14. रंगरेज
15. चित्रकार
16. धानिक (धान्य के व्यापारी)
17. कृषक
18. मछुए
19. कसाई
20. नाईं
21. माली
22. नाविक
23. चरवाहें
24. सार्थसहित
25. डाकू तथा लुटेरे
26. वन आरक्षी (वनों की रक्षा करने वाले)
27. महाजन
28. श्रेणी प्रमुख (जे0दू0 ज्येष्ठ)

पूर्वमध्य युग में शिल्प और उद्योग श्रेणियों में संगठित थे। गाहड़वाल अभिलेखों में पान उगाने वाले गाँवों का उल्लेख है। इस काल के अभिलेखों में मुखिया को महन्तक या माहर कहा गया है। प्रतिहारों के ग्वालियर अभिलेखों में तेलियों तथा मालियों के मुखिया को श्रेष्ठी कहते थे। इनकी कार्य समिति को कार्य–चिन्तक कहा गया है। ग्वालियर के बेताल भट्ट स्वामिन अभिलेख में तीन तेलियों की श्रेणी का उल्लेख है। सियादो की अभिलेख से पता चलता है कि नमक का व्यापार करने वाले वणिकों ने कुम्हार, तेलिक और ताम्बूल श्रेणियों के पास निश्चित पूँजी जमा की। इस पूँजी के सूद के बदले में वे विष्णु के मन्दिर के लिए आवश्यक वस्तुएँ पहुँचाने की व्यवस्था करते थे।

निष्कर्ष

पूर्व मध्ययुग में सामंतवादी व्यवस्था के उद्भव एवं गांवों के आत्मनिर्भर होने के कारण गुप्तोत्तर काल में व्यापार में ह्रास हुआ। पहले शुरूआत में समुद्री व्यापार में अरब व्यापारियों का बोल–बाला अधिक था। इस युग में पश्चिम एशिया के साथ भारत का व्यापार कम हो गया था। चीन के साथ भारत का व्यापार अरबों और हिन्द एशिया के व्यापारियों की प्रतिद्वंद्विता के कारण कम हो रहा था। इस काल में अधिकतर व्यापारिक मार्ग सुरक्षित नहीं थे। इस काल में आंतरिक व विदेशी व्यापार में डकैतों द्वारा व्यापारियों को लूट लिया जाता था। राजा एवं स्थानीय शासक व्यापारियों की रक्षा करने में उतने सक्षम नहीं थे। जिससे व्यापार की स्थितियाँ काफी कठिन और असुविधाजनक थी। पश्चिमी भारत में इतने सारे नगरों का आस्तित्व देखते हुए ऐसा मानना अनुचित न होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में जो चीजें उपजाई या बनाई जाती थी। उनमें से बहुत कुछ ग्रामवासियों के उपयोग के बाद बच जाती थी। शहरों की आबादी बहुत घनी होती थी और इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गाँवों से शहरों के बीच अच्छे खासे पैमाने पर आन्तरिक व्यापार चलता होगा। जिससे गाँवों की गतिहीन अर्थव्यवस्था का स्वरूप निश्चित ही बदलता होगा। परमार अभिलेखों में भी उस समय के आन्तरिक व्यापार की अच्छी स्थिति का संकेत मिलता है। व्यापारी जो वणिक कहलाते थे, ये काफी समृद्धशाली थे। इन्हें आन्तरिक और बाह्य दोनों तरह के व्यापार से धन मिलता था।

संदर्भ ग्रन्थ

1. डी0सी0 सरकार, सिलेक्ट इन्शिक्रिप्शंस बेयरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड रियलाइजेशन – जिल्द 1 पृ0 198–199
2. आर0एस0 शर्मा – पॉलिटिकल सस्पेक्ट ऑफ द कास्ट सिस्टम भाग 3 पृ0 325
3. वही पृ0 177
4. आर0 एस0 शर्मा, इण्डियन फ्यूडीलिज्म परिशिष्ट 11
5. वाटर्स पृष्ठ 168
6. मेघातिथि, मनुस्मृति – 2.98, 8.321, 4.326
7. मानोषोल्लास, 3.1017, 20
8. द बुक ऑफ मार्कोपोलो 2.389, चामो जुकुआ–88
9. साउथ इण्डियन इन्शिक्रिप्शंस, 2, 9.91
10. यामिनी, इलियट एण्ड डाउ सन्स, 2.44
11. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 10
12. मुक्ति कल्पतरू, श्लोक 24, 29
13. अग्नि पुराण, 245, 21, 22
14. पेरिप्लस, पृ0 36
15. मार्कोपोलो, 2.395
16. पी0 नियोगी, दि इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया
17. एच0 डी0 संकालिया, आर्कियोलाजी ऑफ गुजरात
18. 18. दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज
19. डी0 सी0 गांगुली, हिस्ट्री ऑफ दि परमार डाइनेस्टीज
20. पॉलिटी इन दि अग्नि पुराण